International Journal of Sanskrit Research 2021; 7(2): 04-06

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2021; 7(2): 04-06
© 2021 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 03-01-2021
Accepted: 06-02-2021

अनामिका
शोध–छात्रा, संस्कृत एवं पालि विभाग, पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला, पंजाब, भारत

Corresponding Author:
अनामिका
शोध–छात्रा, संस्कृत एवं पालि विभाग, पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला, पंजाब, भारत

मूल्यपरक दयानन्द शिक्षा पद्धति : एक दृष्टि

अनामिका

DOI: https://doi.org/10.22271/23947519.2021.v7.i2a.1359

सारांश
सभ्य एवं सुसंस्कृत मानव ही किसी समाज एवं राष्ट्र की उन्नति का आधार होते हैं। मानव उत्थान हेतु दयानन्द की दूरदर्शिता दयानन्द साहित्य से दृष्टिगोचर होती है। वह मानव जीवन में शिक्षा को कितना महत्व देते थे यह इसी से स्पष्ट है कि अपने प्रसिद्ध ग्रंथ सत्यार्थ प्रकाश में इन्होंने ईश्वर के पश्चात् शिक्षा विषय पर चर्चा की है। शिक्षा प्रत्येक काल का अपरिहार्य अंग है। शिक्षा एक ऐसा सक्षम साधन है जो परिवर्तन एवं विकास की नवीन संभावनाएं उत्पन्न कर सकता है। बहुतः अतीत का प्रेरणादायक उल्लेख वर्तमान को प्रेरित करता है। सम्भवतः दयानन्द की मूल्यपरक शिक्षा पद्धति वर्तमान समय में भी उपयोगी और अनुकरणीय हो सकती है। अतः प्रस्तुत शोधपत्र शिक्षा के क्षेत्र में नवीन संभावनाओं के बीजारोपरण में सहायक सिद्ध हो सकता है।

कूट शब्दः मूल्यपरक, शिक्षा पद्धति, वैदिक शिक्षा

प्रस्तावना
प्रत्येक राष्ट्र की उन्नति हेतु उसकी शिक्षा पद्धति में राष्ट्रीय भावनाओं एवं मूल्यों का समावेश होना आवश्यक है। भारतीय शिक्षा परम्परा प्रारम्भ से ही सुदृढ़ एवं समृद्ध रही है। शिक्षा के माध्यम से विद्यार्थियों में विभिन्न मूल्यों का आरोपण भारतीय शिक्षा पद्धति के मुख्य उद्देश्यों में से एक रहा है। 'मूल्य' शब्द का प्रयोग प्रायः दर्शनशास्त्र, नीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, सौंदर्यशास्त्र इत्यादि में देखने को मिलता है। जीवन को आदर्श एवं सफल बनाने के लिए मानवीय जीवन मूल्य महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इन मूल्यों से युक्त शिक्षा मूल्यपरक शिक्षा कहलाती है। जिसमें नैतिक, सामाजिक, दार्शनिक, आध्यात्मिक, राजनैतिक, बौद्धिक इत्यादि विषय अंतर्भूत होते हैं। ऐसी कार्यविधि अथवा प्रणाली जिसमें इन मानवीय संवेदनाओं को मूल्यपरक बनाकर शिक्षा के माध्यम से व्यक्तित्व का अभिन्न अंग बनाने पर बल दिया जाए उसे मूल्यपरक शिक्षा पद्धति कहते हैं। सत्य, धर्म, शांति, प्रेम और अहिंसा ऐसे मूल एवं सार्वभौमिक मूल्य हैं जिन्हें उस आधारशिला के रूप में अभिनिर्धारित किया जा सकता है जिनके आधार पर शिक्षा कार्यक्रम तैयार किया जाए। वास्तव में ये पांच ऐसे सार्वभौमिक मूल्य हैं जो मानवीय व्यक्तित्व के क्रमशः पांच कार्य क्षेत्रों – बौद्धिक, शारीरिक, भावनात्मक, मनोवैज्ञानिक और अध्यात्मिक को प्रतिनिधित्व करते हैं। इन मूल्यों को शिक्षा में इस प्रकार से प्रदर्शित किया जाना चाहिए कि इनका संबंध पूर्णता वास्तविकता से बना रहे।[1] क्योंकि वह संसार जो हम अपने बच्चों को धरोहर में देते हैं, वह इस पर निर्भर करेगा कि हमने संसार को किस प्रकार के बच्चे धरोहर के रूप में दिए।[2] शिक्षा बालक की योग्यता, प्रतिभा, कार्यपद्धति, क्षमता, व्यवहार इत्यादि सभी तत्वों का विकास करती है। शिक्षा आदिभौतिक, आदिवैदिक एवं आध्यात्मिकता का पूर्ण ज्ञान कराकर मानव में मानवीय गुणों का विकास करती है।[3]

19वीं शताब्दी में जब अंग्रेजों की कूटनीति ने प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति के मूल स्वरूप को ध्वस्त करने का प्रयास किया तब दयानन्द ने वैदिक शिक्षा पद्धति को आधार बनाकर अपनी पठन–पाठन व्यवस्था प्रस्तुत की जिसका उद्देश्य तत्कालीन शिक्षा पद्धति में भारतीयता का पुट समाहित करना था। नैतिक मूल्यों को आरोपित करने के लिए शिक्षा एक सशक्त माध्यम है इस बात को दयानन्द भलीभांति जानते थे। दयानन्द ने शिक्षा के पांच उद्देश्य–शारीरिक विकास, मानसिक विकास, यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति, समाज सुधार की शक्ति का विकास, सद् ज्ञान की प्राप्ति तथा गुणों का विकास माना।[4] उनके अनुसार शिक्षा का अर्थ है – पदार्थ का यथावत् ज्ञान, आत्म कल्याण तथा पर कल्याण में प्रवृत्त करने वाला ज्ञान अर्थात् शिक्षा वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा पदार्थ के स्वरूप का यथावत ज्ञान प्राप्त करने हुए वांछनीय गुणों के विकास द्वारा स्वयं के तथा दूसरों के जीवन को सुखी बनाया जा सके। दयानन्द के अनुसार शिक्षा मनुष्य जीवन का सबसे महान् एवं मूल्यवान गुण है।[5] इसलिए सब मनुष्यों को सुशिक्षा से युक्त होना चाहिए।

दयानन्द ने सर्वप्रथम समान रूप से सबके लिए अनिवार्य शिक्षा का समर्थन किया चाहे वह निर्धन हो या फिर धनी, स्त्री हो या पुरूष। उनके अनुसार सबको तुल्य वस्त्र, खानपान, आसन दिए जाएं चाहे वह राजकुमार या राजकुमारी हो, चाहे दरिद्र की संतान हो, सबको तपस्वी होना चाहिए।[6] इस प्रकार दयानन्द ने सबके लिए समरूप परिश्रम, अनुशासन एवं अवसरों का आहवान किया। दयानन्द ने शिक्षा पद्धति के मूलभूत तत्वों का वर्णन करते हुए कहा है कि माता को गर्भावस्था से ही बालक की औपचारिक शिक्षा एवं संस्कार के विषय में सजग रहना चाहिए। बालक की प्रारंभिक शिक्षा गृह से ही उसके माता–पिता द्वारा संचालित होनी चाहिए। 5 वर्ष की आयु तक बालक को माता शिक्षित करें, आठ वर्ष तक पिता द्वारा बालक को शिक्षित किया जाए इसके पश्चात् उसे गुरू के पास शिक्षा ग्रहण करने के लिए भेजा जाए।[7] बालक की औपचारिक शिक्षा उपनयन संस्कार के बाद आरम्भ होनी चाहिए। 8 वर्ष की आयु में बालक तथा बालिकाओं को पाठशाला में भेज देना चाहिए। पाठशाला नगर से 5 मील की दूरी पर किसी शांत स्थान पर स्थित होनी चाहिए। बालक तथा बालिकाओं के लिए अलग–अलग पाठशालाएं होनी चाहिए।''[8] दयानन्द ने अपनी शिक्षा पद्धति में पाठ्यक्रम पर भी विस्तारपूर्वक चर्चा की है। उन्होंने शिक्षा पद्धति में नैतिक मूल्यों एवं जीवन उन्नयन पर विशेष बल दिया। वह शिक्षा को आचरण में ढालने के पक्षधर थे। इसीलिए उन्होंने मनुस्मृति, वाल्मीकि रामायण और महाभारत के उद्योगपर्व के अन्तर्गत विदुरनीति आदि जैसे उत्तम प्रकरण पढ़ने का उपदेश दिया जिनसे बुरी आदतें दूर हो और उत्तम सभ्यता प्राप्त को सके। इन ग्रन्थों को पाठ्यक्रम में रखने का उद्देश्य विद्यार्थियों में उन चारित्रिक विशेषताएं पैदा करना था जो इन ग्रन्थों के अनुकरणीय पात्रों में थी।[9]

प्राचीन वैदिक दर्शान पर आधारित उनके उपदेशों ने तत्कालीन विक्षिप्त एवं व्यथित समाज के लोगों का उचित मार्गदर्शन करते हुए एकता स्थापित करने का प्रयास किया था। उन के शैक्षिक विचारों में समयानुकूल व्यावहारिकता थी। इसीलिए उनके शिक्षा संबंधी आधारभूत सिद्धांतों को लेकर बालक तथा बालिकाओं के लिए अलग–अलग अनेक शैक्षिक संस्थाएं खोले गए। यह जन शिक्षा, स्त्री शिक्षा, धार्मिक शिक्षा एवं व्यवसायिक शिक्षा समर्थक थे। उन्होंने सह–शिक्षा का कड़ा विरोध किया। उनके प्रभाव से ही देश भर में मातृभाषा के माध्यम से चलने वाले डी.ए.वी. स्कूल एवं कॉलेजों की स्थापना हुई तथा गुरूकुल प्रणाली का भी विकास हुआ। कांगड़ी तथा ज्वालापुर महाविद्यालय, हरिद्वार तथा वृंदावन गुरूकुल (बालकों के लिए) तथा देहरादून एवं सासनी (अलीगढ) के गुरूकूल (बालिकाओं के लिए) इस संबंध में उपयुक्त उदाहरण है।[10]

उन्होंने बालक के गर्भकाल से लेकर 25 वर्ष की आयु तक की शिक्षा की पाठ्यचर्चा निश्चित की है। उनके अनुसार स्वाध्याय, उपदेश, व्याख्यान और वाद–विवाद प्रमुख शिक्षण विधियां है। शारीरिक, मानसिक और नैतिक विकास करना ही उनके अनुसार शिक्षा का मुख्य उद्देश्य होना चाहिए जिससे एक आदर्श नागरिक का निर्माण हो। उनके अनुसार जितना माता से संतानों को उपदेश और उपकार पहुँचता है उतना किसी से नहीं।[11] माता और पिता को अति उचित है कि गर्भाधान से पूर्व, मध्य और पश्चात् मादक द्रव्य, मद्य, दुर्गंध, रूक्ष, बुद्धिनाशक पदार्थों को छोड़कर शांति, आरोग्य, बल, पराक्रम और सुशीलता को प्राप्त करें।[12] 9वे वर्ष के आरंभ में द्विज अपनी संतानों का उपनयन करके जैसे अन्य शिक्षा है वैसे चोरी, आलस्य, प्रमाद, मादक, द्रव्य, मोह आदि दोषों के छोड़ने और सत्याचार के ग्रहण करने की शिक्षा देने की कोशिश करें। सन्तानों को उत्तम विद्या, शिक्षा, गुण, कर्म और स्वभावरूप आभूषणों को धारण कराना माता, पिता, आचार्य और सम्बन्धियों का मुख्य कर्म है।[13] दयानंद ने विभिन्न आर्ष ग्रंथों से ब्रहमचर्य काल को उद्धृत कर एक आचार सहिंता प्रस्तुत की, जो आचार्य और विद्यार्थियों दोनों के लिए है। इसको दयानन्द ने पठन–पाठन के नियम कहा है। इनके अनुसार जब तक गुरूजनों का आचरण स्वयं वैसा नहीं होगा तब तक बालकों का आचरण आदर्श नहीं बन सकता।[14] पढ़ाने वालों को लक्षित करते हुए उन्होंने लिखा कि–

> आत्मज्ञानं समारम्भस्तितिक्षा धर्मनित्यता। यमर्था नापकर्षिन्त स वै पण्डित उच्यते।।

अर्थात् – जिसे परमात्मा और जीवात्मा का यथार्थ ज्ञान हो, जो आलस्य को छोड़कर सदा उद्योगी, सुख–दुख आदि को सहन करने वाला धर्म का नित्य सेवन करने वाला हो, जिसको कोई पदार्थ धर्म से छुड़ाकर अधर्म की और न खींच सके वह पंडित कहलाता है।[15]

स्वामी जी के अनुसार जो विद्या पढ़े और पढ़ाए उनमें ये सात दोष नहीं होने चाहिए–

> आलस्य मदमोही चापलं गीष्ठिरेव च।।
> स्तब्धता चामिमानित्वं तथा त्यागित्वमेद च।।
> एते वै सप्तदोषाः स्युः सदा विद्यार्थिनो मताः।।

अर्थात् – आलस्य, अभिमान, नशा करना, मूढ़ता, चपलता, व्यर्थ इधर–उधर की बातें करना, जड़ता, कभी पढ़ना कभी न पढ़ना, अभिमान और लोभ–लालच ये सात विद्यार्थियों के लिए विद्या के विरोधी दोष है।[16]

दयानन्द के अनुसार विद्यार्थी और शिक्षार्थी दोनों के जीवन में अनुशासन का एक समान महत्व है। दोनों यथार्थ आचरण एवं सत्याचार से सत्य विद्याओं का अध्ययन एवं अध्यापन करें, तपस्वी अर्थात् धर्म अनुष्ठान करते हुए वेदादि शास्त्रों को ग्रहण करें। बाहय इंद्रियों को बुरे आचरणों से रोक कर पढ़े और पढ़ाते जाएं, मन को सब प्रकार के दोषों से हटाएं।[17] शिक्षा को परिवर्तन का उत्तम साधन स्वीकार करत हुए है दयानंद कहते हैं कि जिससे मनुष्य विद्या आदि शुभ गुणों की प्राप्ति और अविद्या आदि दोषों को छोड़कर सदा आनंदित हो सकें वह शिक्षा कहलाती हैं।[18] विद्या और अविद्या के अंतर को स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं कि जिससे पदार्थ का स्वरूप यथावत् जानकर उससे उपकार लेकर अपने और दूसरों के लिए सब सुखों को सिद्ध कर सकें वह विद्या है और जिससे पदार्थों के स्वरूप को उल्टा जानकर अपना और पराया अनुपकार करें वह अविद्या कहलाती है।[19]

निरूक्त के अनुसार आचार्य शब्द को परिभाषित करते हुए उन्होंने कहा–

आचार्य आचार्यं ग्रहयति।

अर्थात् – आचार्य इसलिए आचार्य कहलाता था क्योंकि वह अपने छात्रों को आचरण का पाठ पढ़ाता था।[20]

दयानन्द के अनुसार विद्या द्वारा यथार्थ ज्ञान से युक्त होकर, यथा योग्य व्यवहार करने कराने से आप और दूसरों को आनंद युक्त करना विद्या का फल है क्योंकि बिना विद्या के किसी मनुष्य को निश्चल सुख नहीं हो सकता।[21] उत्तम गुणों की प्रशंसा करते हुए दयानन्द लिखते हैं कि उत्तम गुण उसके बुरे काम और दुखों को नष्ट करके सर्वोत्तम धर्मयुक्त कर्मों और सब सुखों को प्राप्त करवाने वाले होते हैं और इन्हीं के द्वारा मनुष्य उत्तम अध्यापक और उत्तम विद्यार्थी बन सकते हैं।[22] आचार्य किस प्रकार से विद्या और सुशिक्षा को विद्यार्थियों को ग्रहण करवाए इसका उत्तर देते हुए वह कहते हैं कि आचार्य समाहित हो कर इस प्रकार शिक्षा ग्रहण करवाए जिससे विद्यार्थी की आत्मा के भीतर अर्थ सुनिश्चित हो जाए और उसका उत्साह बढ़ता जाए, वह ऐसी चेष्ठा और कर्म कभी न करे जिसको करके या देखकर विद्यार्थी अधर्म युक्त हो जाए।[23] उन्होंने समस्त विद्या और अज्ञानता का नाश करके ज्ञान को स्थापित करने तथा वेदों में वर्णित मानव जीवन को आदर्श के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया। वैदिक काल में यह माना जाता था कि मनुष्य छात्र जीवन में अनुशासित जीवन

व्यतीत करके भविष्य के लिए अद्वितीय शक्ति प्राप्त कर लेता है। उस समय शिक्षा का मुख्य उद्देश्य मस्तिष्क को अनुशासित करना था ताकि बालक दुराचरण से दूर रह सकें। शिक्षा के माध्यम से बालक की तामसिक और पाशविक प्रवृत्तियों पर नियंत्रण किया जाता था जिससे वह सदसत् का भेद करने में समर्थ होता था।[24] ऋग्वेद में तो शिक्षा का फल ही उत्तम चरित्र एवं उत्तम आचरण कहा गया है।[25] वैदिक युग में शिक्षा एवं शिक्षण पद्धति का व्यवसायीकरण नहीं हुआ था। लोग वास्तविक एवं संपूर्ण ज्ञान की प्राप्ति के लिए ही विद्या का अध्ययन करते थे। उस समय शिक्षा आत्मज्ञान, व्यवहार कुशलता, चरित्रनिर्माण, सत्यनिष्ठा, कर्तव्य परायणता और विश्व कल्याण की कामना के लक्ष्यों को सामने रखकर दी जाती थी।[26] दयानन्द ने वेद को आधार बनाकर प्राचीनतम परम्परा तथा बौद्धिकता का समन्वय किया, आध्यात्मिकता तथा व्यावहारिकता दोनों का उचित महत्व दिखलाया और धर्म तथा समाज में नवीन क्रान्ति पैदा की।[27]

दयानन्द की मूल्यपरक शिक्षा पद्धति की एक अनुपम विशेषता है कि इसमें विविध विषयों का समावेश है। सदाचार, विद्या, अनुराग, शिष्टाचार जैसे सद्गुणों को, संगीत आदि ललित–कलाओं, शरीर–विज्ञान, पदार्थ–विज्ञान आदि विज्ञानों, कला–कौशल और राष्ट्र भावना, समाज–सुधार एवं लोकोपकार जैसे सद्भावों को समुचित स्थान दिया गया है।[28] दयानन्द ने प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से भारतीय शिक्षा पद्धति में अमूल्य योगदान दिया। ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, सत्यार्थ प्रकाश, व्यवहारभानु आदि दयानन्द के सर्वश्रेष्ठ एवं प्रसिद्ध ग्रंथ हैं जिसमें उन्होंने वैदिक शिक्षा पर आधारित अपने शैक्षिक विचारों की विस्तारपूर्वक चर्चा की है। दयानन्द मूल्यपरक वैदिक उपदेशों को जनसाधारण के लिए सुलभ बनना चाहते थे। इसीलिए उन्होंने ''वेदों की ओर लौटो'' का उद्घोष दिया। इस प्रकार दयानन्द ने तत्कालीन परिस्थितियों के अनुसार ऐसी मूल्यपरक शिक्षा पद्धति प्रस्तुत की जो विद्यार्थियों में मानवीय मूल्यों का विकास करके उनके व्यक्तित्व निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सके।

निष्कर्षः –

वस्तुतः दयानन्द की मूल्यपरक शिक्षा पद्धति का मुख्य उद्देश्य मानव मात्र की उन्नति था। नारी शिक्षा, निःशुल्क शिक्षा, सर्वसमान शिक्षा इत्यादि दयानन्द शिक्षा पद्धति के ऐसे महत्वपूर्ण सिद्धांत है जिन्हें दयानन्द ने सर्वप्रथम प्रतिपादित किया और इन्हें वर्तमान शिक्षा पद्धति में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। दयानन्द ने अपनी रचनाओं, सम्भाषणों, लेखों तथा शास्त्रार्थों के माध्यम से प्राचीन वैदिक ज्ञान एवं मूल्यों को पुनः स्थापित करने के भरसक प्रयास किए। अद्यतन भी हम पुरातन और नवीन शिक्षा पद्धति के सामंजस्य से ऐसी मूल्यपरक शिक्षा पद्धति का निर्माण कर सकते हैं जो प्रचलित शिक्षा में गुणात्मक संशोधन की संभावनाओं को प्रबल कर सकती है।

संदर्भ ग्रंथ–सूची

1. राजपूत, जगमोहन सिंह, शैक्षिक परिवर्तन का यथार्थ, विद्या विहार, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण – 2004, पृष्ठ – 188
2. वही, पृष्ठ – 131
3. आर्या नीरजा, जैन अंजलि, नारंग पी. एवं. जैन रचना, शिक्षा कोश (3खण्डों में) खण्ड–पप (भाग ग्प, शिक्षा के सिद्धांत), के. एस. के पब्लिशर्स, 2005, पृष्ठ–1
4. पाठक, आर. पी., भारत के महान् शिक्षा शास्त्री, पियर्सन पब्लिकेशन, दिल्ली, 2012 पृष्ठ–28
5. दयानन्द, स्वामी, सत्यार्थ प्रकाश, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली, संस्करण 1985, पृष्ठ–30
6. वही, पृष्ठ–26
7. वही, पृष्ठ–45
8. पाठक, आर. पी., भारत के महान् शिक्षा शास्त्री, पियर्सन पब्लिकेशन, दिल्ली, 2012, पृष्ठ–32
9. दयानन्द, स्वामी, सत्यार्थ प्रकाश, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली, संस्करण 1985, पृष्ठ–20
10. पाठक, आर. पी., भारत के महान् शिक्षा शास्त्री, पियर्सन पब्लिकेशन, दिल्ली, 2012, पृष्ठ–32
11. दयानन्द, स्वामी, सत्यार्थ प्रकाश, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली, संस्करण 1985, पृष्ठ–20
12. वही, पृष्ठ–21
13. वही, पृष्ठ–24–26
14. कुमार, सुरेंद्र, महर्षि दयानन्दवर्णित शिक्षापद्धति (महर्षि के शब्दों में अनुशीलन सहित), वैदिक अनुसंधान सदन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2004, पृष्ठ 138
15. दयानन्द, स्वामी, व्यवहारभानु, वैदिकयन्त्रालय, अजमेर, पंचम संस्करण, संवत् 1957, पृ. 1
16. वही, पृष्ठ – 6
17. दयानन्द, स्वामी, सत्यार्थ प्रकाश, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली, संस्करण 1985, पृष्ठ – 33
18. दयानन्द, स्वामी, व्यवहारभानु, वैदिकयन्त्रालय, अजमेर, पंचम संस्करण, संवत् 1957, पृ. 1
19. वही, पृष्ठ – 7
20. शास्त्री, कपिल देव एवं पांडे, श्रीकांत (समीक्षक), यास्कीय हिंदी– निरुक्त, साहित्य भंडार, मेरठ, 1999, 1/4
21. दयानन्द, स्वामी, व्यवहारभानु, वैदिकयन्त्रालय, अजमेर, पंचम संस्करण, संवत् 1957, पृ.13
22. वही, पृष्ठ – 7
23. वही, पृष्ठ – 13
24. कालरा, सरला, प्राचीन भारत मे लौकिक शिक्षा, साक्षर भारत, जयपुर, 2013, पृष्ठ – 424
25. सातवलेकर, श्रीपाद दामोदर, ऋग्वेद संहिता, 7 स्वाध्याय मंडल पारडी, बलसाड, गुजरात, 1931, 1/89/1
26. झा, नागेंद्र (डॉ.), वैदिक शिक्षा पद्धति और आधुनिक शिक्षा पद्धति, वेंकटेश प्रकाशन , नई दिल्ली, पृष्ठ – 16 – 18
27. शास्त्री, श्री निवास (डॉ), दयानन्द–दर्शनः एक अध्ययन, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र 1977, भूमिका
28. वही, पृष्ठ – 122